© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 02 | January – March 2018

भारत में औपनिवेशिक राजस्व प्रणाली : एक विवेचना

श्रीमती अनुबाला

परिचय

औपनिवेशिक शासन सर्वप्रथम बंगाल में स्थापित किया गया था। यही वह प्रांत था जहाँ पर सबसे पहले ग्रामीण समाज को पुनः व्यवस्थित करने और भूमि संबंधी अधिकारों की नयी व्यवस्था तथा एक नयी राजस्व प्रणाली स्थापित करने के प्रयत्न किए गए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, बुकानन ने राजमहल की पहाड़ियों का दौरा किया था। उसके वर्णन के अनुसार ये पहाड़ियाँ अभेद्य लगती थीं। यह एक ऐसा खतरनाक इलाका था जहाँ बहुत कम यात्री जाने की हिम्मत करते थे। बुकानन जहाँ कहीं भी गया, वहाँ उसने निवासियों के व्यवहार को शत्रुतापूर्ण पाया। वे लोग कंपनी के अधिकारियों के प्रति आशंकित थे और उनसे बातचीत करने को तैयार नहीं थे। कई उदाहरणों में तो वे अपने घर-बार और गाँव छोड़कर भाग गए थे। ये पहाड़ी लोग कौन थे? वे बुकानन के दौरे के प्रति इतने आशांकित क्यों थे? बुकानन की पत्रिका में हमें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इन लोगों की जो तरस खाने वाली हालत थी उसकी झलक मिलती है। उन स्थानों के बारे में उसने डायरी लिखी थी, जहाँ-जहाँ उसने भ्रमण किया था, लोगों से मुलाकात की थी और उनके रीति-रिवाजों को देखा था।

यदि अठारहवीं शताब्दी के परवर्ती दशकों के राजस्व अभिलेखों पर दृष्टिपात किया जाए तो ये जान लिया जाएगा कि पहाड़ी लोगों को पहाड़िया क्यों कहा जाता था। वे राजमहल की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द रहा करते थे। वे जंगल की उपज से अपनी गुजर-बसर करते थे और झूम खेती किया करते थे। वे जंगल के छोटे-से हिस्से में झाड़ियों को काटकर और घास-फूँस को जलाकर जमीन साफ कर लेते थे आरै राख की पोटाश से उपजाई बनी जमीन पर ये पहाड़िया लोग अपने खाने के लिए तरह-तरह की दालें और ज्वार-बाजरा उगा लेते थे। वे अपने कुदाल से जमीन को थोड़ा खुरच लेते थे कुछ वर्षो तक उस साफ की गई जमीन मे खती करते थे आरै फ़िर उसे कुछ वर्षो के लिए परती छोड़ कर नए इलाके मे चले जाते थे जिससे कि उस जमीन में खोई हुई उर्वरता फ़िर से उत्पन्न हो जाती थी।

उन जंगलों से पहाड़िया लोग खाने के लिए महुआ के फूल इकट्ठा करते थे, बेचने के लिए रेशम के कोया और राल और काठकोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करते थे। पेड़ों के नीचे जो छोटे-छोटे पौधो उग आते थे या परती जमीन पर जो घास-फूस की हरी चादर-सी बिछ जाती थी वह पशुओं के लिए चरागाह बन जाती थी। शिकारियों, झूम खेती करने वालों, खाद्य बटोरने वालों, काठकोयला बनाने वालों, रेशम के कीड़े पालने वालों के रूप में पहाड़िया लोगों की ज़िंदगी इस प्रकार जंगल से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। वे इमली के पेड़ों के बीच बनी अपनी झोपड़ियों में रहते थे और आम के पेड़ों की छाँह में आराम करते थे। वे पूरे प्रदेश को अपनी निजी भूमि मानते थे और यह भूमि उनकी पहचान और जीवन का आधार थी। वे बाहरी लोगों के प्रवेश का प्रतिरोध करते थे। उनके मुखिया लोग अपने समूह में एकता बनाए रखते थे, आपसी लड़ाई-झगड़े निपटा देते थे और अन्य जनजातियों तथा मैदानी लोगों के साथ लड़ाई छिड़ने पर अपनी जनजाति का नेतृत्व करते थे।

इन पहाड़ियों को अपना मूलाधार बनाकर, पहाड़िया लोग बराबर उन मैदानों पर आक्रमण करते रहते थे जहाँ किसान एक स्थान पर बस कर अपनी खेती-बाड़ी किया करते थे। पहाड़ियों द्वारा ये आक्रमण ज्यादातर अपने

आपको विशेष रूप से अभाव या अकाल के वर्षों में जीवित रखने के लिए किए जाते थे। साथ ही, ये हमले मैदानों में बसे हुए समुदायों पर अपनी ताकत दिखलाने का भी एक तरीका था। इसके अलावा, ऐसे आक्रमण बाहरी लोगों के साथ अपने राजनीतिक संबंधो बनाने के लिए भी किए जाते थे। मैदानों में रहने वाले जमींदारों को अकसर इन पहाड़ी मुखियाओं को नियमित रूप से खराद देकर उनसे शांति खरीदनी पड़ती थी। इसी प्रकार, व्यापारी लोग भी इन पहाड़ियों द्वारा नियंत्रित रास्तों का इस्तेमाल करने की अनुमति प्राप्त करने हेतु उन्हें कुछ पथकर दिया करते थे। जब ऐसा पथकर पहाड़िया मुखियाओं को मिल जाता था तो वे व्यापारियों की रक्षा करते थे और यह भी आश्वासन देते थे कि कोई भी उनके माल को नहीं लूटेगा। इस प्रकार कुछ ले-देकर की गई शांति संधि अधिक लंबे समय तक नहीं चली। यह अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में उस समय भंग हो गई जब स्थिर खेती के क्षेत्र की सीमाएँ आक्रामक रीति से पूर्वी भारत में बढ़ाई जाने लगीं।

अंग्रेजों ने जंगलों की कटाई-सफ़ाई के काम को प्रोत्साहित किया और जमींदारों तथा जोतदारों ने परती भूमि को धान के खेतों में बदल दिया। अंग्रेजों के लिए स्थायी कृषि का विस्तार आवश्यक था क्योंकि उससे राजस्व के स्रोंतों में वृद्धि हो सकती थी, निर्यात के लिए फ़सल पैदा हो सकती थी और एक स्थायी, सुव्यवस्थित समाज की स्थापना हो सकती थी। वे जंगलों को उजाड़ मानते थे और वनवासियों को असभ्य, बर्बर, उपद्रवी और क्रूर समझते थे जिन पर शासन करना उनके लिए कठिन था। इसलिए उन्होंने यही महसूस किया कि जंगलों का सफ़ाया करके, वहाँ स्थायी कृषि स्थापित करनी होगी और जंगली लोगों को पालतू व सभ्य बनाना होगा उनसे शिकार का काम छुड़वाना होगा और खेती का धंधा अपनाने के लिए उन्हें राजी करना होगा। ज्यों-ज्यों स्थायी कृषि का विस्तार होता गया, जंगलों तथा चरागाहों का क्षेत्र संकुचित होता गया। इससे पहाड़ी लोगों तथा स्थायी खेतीहरों के बीच झगड़ा तेज हो गया। पहाड़ी लोग पहले से अधिक नियमित रूप से बसे हुए गाँवों पर हमले बोलने लगे और ग्रामवासियों से अनाज और पशु छीन-झपट कर ले जाने लगे। औपनिवेशिक अधिकारियों ने उत्तेजित होकर इन पहाड़ियों पर काबू की भरसक कोशिशें कीं परंतु उनके लिए ऐसा करना आसान नहीं था। 1770 के दशक में ब्रिटिश अधिकारियों ने इन पहाड़ियों को निर्मूल कर देने की क्रूर नीति अपना ली और उनका शिकार और संहार करने लगे। तदोपरांत, 1780 के दशक में भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड ने शांति स्थापना की नीति प्रस्तावित की जिसके अनुसार पहाड़िया मुखियाओं को एक वार्षिक भत्ता दिया जाना था और बदले में उन्हें अपने आदमियों का चाल-चलन ठीक रखने की जिम्मेदारी लेनी थी। उनसे यह भी आशा की गई थी कि वे अपनी बस्तियों में व्यवस्था बनाए रखेंगे और अपने लोगों को अनुशासन में रखेंगे। लेकिन बहुत से पहाड़िया मुखियाओं ने भत्ता लेने से मना कर दिया। जिन्होंने इसे स्वीकार किया उनमें से अधिकांश अपने समुदाय में अपनी सत्ता खो बैठे। औपनिवेशिक सरकार के वेतनभोगी बन जाने से उन्हें अधीनस्थ कर्मचारी या वैतनिक मुखिया माना जाने लगा।

जब शांति स्थापना के लिए अभियान चल रहे थे तभी पहाड़िया लोग अपने आपको शत्रुतापूर्ण सैन्यबलों से बचाने के लिए और बाहरी लोगों से लड़ाई चालू रखने के लिए पहाड़ों के भीतरी भागों में चले गए। इसलिए जब 1810-11 की सर्दियों में बुकानन ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी तो यह स्वाभाविक ही था कि पहाड़िया लोग बुकानन को संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखते। शांति स्थापना के अभियानों के अनुभव और क्रूरतापूर्ण दमन की यादों के कारण उनके मन में यह धारणा बन गई थी कि उनके इलाको ब्रिटिश लोगो की

घुसपैठ का क्या असर होने वाला है उन्हे ऐसे प्रतीत होता था कि प्रत्येक गोरा आदमी एक ऐसी शक्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो उनसे उनके जंगल और जमीन छीन कर उनकी जीवन शैली और जीवित रहने के साधनों को नष्ट करने पर उतारू हैं। वस्तुत: इन्हीं दिनों उन्हें एक नए खतरे की सूचनाएँ मिलने लगी थीं और वह था संथाल लोगों का आगमन।

संथाल लोग वहाँ के जंगलों का सफ़ाया करते हुए, इमारती लकड़ी को काटते हुए, जमीन जोतते हुए और चावल तथा कपास उगाते हुए उस इलाको में बड़ी संख्या में घुसे चले आ रहे थे। चूँकि संथाल बाशिंदों ने निचली पहाड़ियों पर अपना कब्जा जमा लिया था, इसलिए पहाड़ियों को राजमहल की पहाड़ियों में और भीतर की ओर पीछे हटना पड़ा। पहाड़िया लोग अपनी झूम खेती के लिए कुदाल का प्रयोग करते थे इसलिए यदि कुदाल को पहाड़िया जीवन का प्रतीक माना जाए तो हल को नए बाशिंदों ;संथालों की शक्ति का प्रतिनिधि मानना होगा। हल और कुदाल के बीच की यह लड़ाई बहुत लंबी चली।

सन् 1810 के अंत में, बुकानन ने गंजुरिया पहाड़, जो कि राजमहल श्रंखलाओं का एक भाग था, को पार किया और आगे के चट्टानी प्रदेश के बीच से निकलकर वह एक गाँव में पहुँच गया। वैसे तो यह एक पुराना गाँव था पर उसके आस-पास की जमीन खेती करने के लिए अभी-अभी साफ की गई थी। वहां के भूदृश्य का देखकर उसे पता चला कि 'मानव श्रम के समुचित प्रयोग से' उस क्षेत्र की तो काया ही पलट गई है। उसने लिखा, गंजुरिया मे अभी-अभी काफ़ी जुताई की गई है जिससे यह पता चलता है कि इसे कितने शानदार इलाके बदला जा सकता है मै सोचता हूँ, इसकी सुंदरता और समृद्ध विश्व के किसी भी क्षेत्र जैसी विकसित की जा सकती है। यहाँ की जमीन अलबत्ता चट्टानी है लेकिन बहुत ही ज्यादा बढ़िया है और बुकानन ने उतनी बढ़िया तंबाकू और सरसों और कहीं नहीं देखीं। पूछने पर उसे पता चला कि वहाँ संथालों ने कृषि क्षेत्र की सीमाएँ काफ़ी बढ़ा ली थी। वे इस इलाके मे 1800 के आस-पास आए थे उन्हानें वहाँ रहने वाले पहाड़ी लोगों को नीचे के ढालों पर भगा दिया, जंगलों का सफाया किया आरै फ़िर वहाँ बस गए।

संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में कैसे पहुँचे? संथाल 1780 के दशक के आस-पास बंगाल में आने लगे थे। जमींदार लोग खेती के लिए नयी भूमि तैयार करने और खेती का विस्तार करने के लिए उन्हें भाड़े पर रखते थे और ब्रिटिश अधिकारियों ने उन्हें जंगल महालों में बसने का निमंत्रण दिया। जब ब्रिटिश लोग पहाड़ियों को अपने बस में करके स्थायी कृषि के लिए एक स्थान पर बसाने में असफल रहे तो उनका ध्यान संथालों की ओर गया। पहाड़िया लोग जंगल काटने के लिए हल को हाथ लगाने को तैयार नहीं थे और अब भी उपद्रवी व्यवहार करते थे। जबकि, इसके विपरीत, संथाल आदर्श बाशिंदे प्रतीत हुए, क्योंकि उन्हें जंगलों का सफ़ाया करने में कोई हिचक नहीं थी और वे भूमि को पूरी ताकत लगाकर जोतते थे।

संथालों को जमीनें देकर राजमहल की तलहटी में बसने के लिए तैयार कर लिया गया। 1832 तक, जमीन के एक काफ़ी बड़े इलाको को दामिन-इ-कोह के रूप में सीमांकित कर दिया गया। इसे संथालों की भूमि घोषित कर दिया गया। उन्हें इस इलाके के भीतर रहना था, हल चलाकर खेती करनी थी और स्थायी किसान बनना था। संथालों को दी जाने वाली भूमि के अनुदान-पत्र में यह शर्त थी कि उनको दी गई भूमि के कम-से-कम दसवें भाग को साफ़ करके पहले दस वर्षों के भीतर जोतना था। इस पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करके उसका नक्शा तैयार

किया गया। इसके चारों ओर खंबे गाड़कर इसकी परिसीमा निर्धारित कर दी गई और इसे मैदानी इलाके के स्थायी कृषकों की दुनिया से और पहाड़िया लोगों की पहाड़ियों से अलग कर दिया गया।

दामिन-इ-कोह के सीमांकन के बाद, संथालों की बस्तियाँ बड़ी तेजी से बढ़ीं, संथालों के गाँवों की संख्या जो 1838 में 40 थी, तेजी से बढ़कर 1851 तक 1,473 तक पहुँच गई। इसी अवध में, संथालों की जनसंख्या जो केवल 3,000 थी, बढ़कर 82,000 से भी अधिक हो गई। जैसे-जैसे खेती का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे कंपनी की तिजोरियों में राजस्व राशि में वृद्धि होती गई। उन्नीसवीं शताब्दी के संथाल गीतों और मिथकों में उनकी यात्रा के लंबे इतिहास का बार-बार उल्लेख किया गया है: उनमें कहा गया है कि संथाल लोग अपने लिए बसने योग्य स्थान की खोज में बराबर बिना थके चलते ही रहते थे। अब यहाँ दामिन-इ-कोह में आकर मानो उनकी इस यात्रा को पूर्ण विराम लग गया।

जब संथाल राजमहल की पहाड़ियों पर बसे तो पहले पहाड़िया लोगों ने इसका प्रतिरोध किया पर अंततोगत्वा वे इन पहाड़ियों में भीतर की ओर चले जाने के लिए मजबूर कर दिए गए। उन्हें निचली पहाड़ियों तथा घाटियों में नीचे की ओर आने से रोक दिया गया और ईपरी पहाड़ियों के चट्टानी और अधिक बंजर इलाकों तथा भीतरी शुष्क भागों तक सीमित कर दिया गया। इससे उनके रहन-सहन तथा जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा और आगे चलकर वे गरीब हो गए। झूम खेती नयी-से-नयी जमीनें खोजने और भूमि की प्राकृतिक उर्वरता का उपयोग करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। अब सर्वाधिक उर्वर जमीनें उनके लिए दुर्लभ हो गईं क्योंकि वे अब दामिन का हिस्सा बन चुकी थीं। इसलिए पहाड़िया लोग खेती के अपने तरीके ;झूम खेती को आगे सफलतापूर्वक नहीं चला सके।

जब इस क्षेत्र के जंगल खेती के लिए साफ़ कर दिए गए तो पहाड़िया शिकारियों को भी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके विपरीत संथाल लोगों ने अपनी पहले वाली खानबदोश ज़िंदगी को छोड़ दिया था। अब वे एक जगह बस गए थे और बाजार के लिए कई तरह के वाणिज्यिक फ़सलों की खेती करने लगे थे और व्यापारियों तथा साहूकारों के साथ लेन-देन करने लगे थे। किंतु, संथालों ने भी जल्दी ही यह समझ लिया कि उन्होंने जिस भूमि पर खेती करनी शुरू की थी वह उनके हाथों से निकलती जा रही है। संथालों ने जिस जमीन को साफ़ करके खेती शुरू की थी उस पर सरकार ;राज्य भारी कर लगा रही थी, साहूकार ;दिकू लोग बहुत ऊंची दर पर ब्याज लगा रहे थे और कर्ज अदा न किए जाने की सूरत में जमीन पर ही कब्जा कर रहे थे, और जमींदार लोग दामिन इलाके पर अपने नियंत्रण का दावा कर रहे थे। 1850 के दशक तक, संथाल लोग यह महसूस करने लगे थे कि अपने लिए एक आदर्श संसार का निर्माण करने के लिए, जहाँ उनका अपना शासन हो, जमींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक राज के विरुद्ध विद्रोह करने का समय अब आ गया है।

1855-56 के संथाल विद्रोह के बाद संथाल परगने का निर्माण कर दिया गया, जिसके लिए 5,500 वर्गमील का क्षेत्र भागलपुर और बीरभूम जिलों में से लिया गया। औपनिवेशिक राज को आशा थी कि संथालों के लिए नया परगना बनाने और उसमें कुछ विशेष कानून लागू करने से संथाल लोग संतुष्ट हो जाएँगे।

सन्दर्भ ग्रथ सची:

Chauhan, D. S. Samkalin Europe (Hindi)

Bronowski, J., and Bruce The Western Intellectual Tradition Mazlish

Carr, E.H. The Bolshevik Revolution, 1917-23, 3 Vols.

Carr, E.H. 1917 : Before and After

Chauhan, D. S. Europe Ka Itihas (Hindi)

Gupta, Parthasarthi (ed.) Adhunik Paschim Ka Uday (Hindi)

Cipolla, Carlo M Before the Industrial Revolution: European Society and Economy1000-1700 Coleman, D. C. (ed.) Revisions in Mercantilism